गाथा (GAATHA)
स्त्री अस्मिता और विमर्श की सहकर्मी-समीक्षित, अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका

ISSN : 3049-3463(Online)
Vol.-2; Issue-2 (July-Dec.) 2025
Page No.- 07-15
©2025 Gaatha
https://gaatha.net.in
Author :
डॉ. सुशील कुमार
सहायक प्राध्यापक, स्नाकोत्तर हिंदी विभाग, महाराजा कॉलेज आरा, वीर कुँवर सिंह विश्विद्यालय, आरा.

Corresponding Author :
डॉ. सुशील कुमार
सहायक प्राध्यापक, स्नाकोत्तर हिंदी विभाग, महाराजा कॉलेज आरा, वीर कुँवर सिंह विश्विद्यालय, आरा.

सत्संगति और हृदय शुद्धि

निर्गुण ज्ञानी संत सत्संग को अपनी साधना का विशिष्ट अंग मानते थे। चित शुद्धि और निराडम्बर जीवन की शैली पर उनकी विशेष आस्था थी। उनका कार्य उपदेश देना और सुधार करना था।

"संतों ने सत्संगति को भक्ति का मूलाधार तक स्वीकार किया है। व्यक्ति जिनके संग रहता है, उसका प्रभाव उसपर पड़ता है। संत कबीर ने अपनी वाणी में सत्संगति का महत्त्व बतलाते हुए कुसंगति के त्याग की धरना पुष्ट की है। कबीर ने भक्ति साधना का एक सोपान सत्संगति को स्वीकारा है, क्योंकि सत्संगति मनुष्य के आत्म संयम में सहायक होती है। जो जैसी संगती में रहता है वैसे ही उसका चरित्र बन जाता है। इसलिए कहा गया है कि संगती के प्रभाववश वह जो भी कर्म करता है उसी के अनुसार उसे फल मिलता है:-

कबीर तन पंक्षी भया, जहां मन तहां उड़ि जाय।
जो जैसी संगती करे, सो तैसे फल खाई।।

स्पष्ट है कि संगती को कर्मफल माना गया है। संगती का प्रभाव व्यक्ति पर किस न किसी रुप में अवश्य पड़ता है। उसका विद्रोह स्वर एक आधार प्राप्त करता है। वास्तव में संत कबीर संत्संगति से अभिभूत दिखलाई पड़ते है। उनका निश्चित मत है कि सत्संगति कभी भी निष्फल नहीं जाती। उसका फल अवश्य मिलता है और यश प्राप्ति होती है। इसलिए सत्संगति अवश्य करनी चाहिए :-

कबीर संगतिउ साथ की, करे न निर्फल होई।
चंदन होसी बांधना, नीब न कहसी कोई।।

सत्संगति कबीर की दृष्टि में भक्ति का आधार है। गुरु कृपा होने पर ही जीव को सत्संगति का महत्त्व समझ अत है। वह सांसारिक वैभव-ऐश्वर्य को त्याग ब्रह्म के भक्ति के प्रति सदैव समर्पित रहता है। सत्संगति जीवन की सहजता है। इसलिए भक्ति में इसकी अनिवार्यता

तक स्वीकार की गयी है। इसमें लीन जीव का आपा (अहं) स्वतः मिट जाता है। वह प्रभु-प्रेम में अपनी जीवन की सार्थकता मानाने लगता है। तभी हमें संत-कबीर आपा मिटाने की बात करते हैं:-

आपा मेंटे हरी मिलै, हरी मेंटे सब जाई।
अकथ कहानी प्रेम की, कहे न कोई पतियाइ।।

सत्संगति को इसलिए साध-संगति कहा गया है। संत कबीर की विशेषता यह है कि वे अध्यात्म में भी लोक-व्यव्हार को कदापि नहीं भूलते। इन्होने सदैव आम आदमी को ध्यान में रखा है। तभी वे समझते है कि हमें अपना उस प्रभु से संबंध गुरु और शिष्य का, स्वामी और दास का रखते हुए पांव और घास के संबंध और स्थिति को ध्यान में रखना होगा-

कबीर चेरा संत का, दासिनी का परदास।
कबीर ऐसा ही रहा, ज्यों पावां तलि घास।।

'घास में मौन और दास भाव सदैव रहता है, जीव में यह भाव सत्संगति से आता है। इस सत्संगति में उसे सही दिशा-बोध होता है, वह अपने संकल्प को कभी नहीं त्यागता। "

संत साहित्य में चित की शुद्धि परम् आवश्यक है। इसके बिना प्रभु की भक्ति नहीं हो सकती। चित बड़ा चंचल होता है। यह तरह-तरह के आसक्तियों के वश में हो जाता है। इनमें काम-क्रोध, ईर्ष्या-द्वेष और लोभ-लालच प्रमुख है। आत्मा को मन और माया से छुटकारा दिलाने के लिए मन का पवित्र होना आवश्यक है। मन पवित्र हो सकता है जब ऐसे संत या महात्मा की संगति प्राप्त जिसने विषय-विकारों की ओर ध्यान दिलाकर मन को रोकने के लिए प्रेरित किया है। उनके निर्देशनुसार अभ्यास करने से मन धीरे-धीरे शांत हो जाता है और एकाग्र भाव का उदय होता है। इसलिए परमात्मा की भक्ति के लिए चित की शुद्धि आवश्यक है। संत रविदास जी कहते है सत्य, संतोष एवम शुद्धाचरण मनुष्य जीवन का सच्चा आधार है। इससे विमुख प्राणी जीवन में सच्चा सुख प्राप्त नहीं कर सकता। काम, क्रोध, मद, लोभ, अहं आदि पांच विकारों का दमन करने वाला साधक प्रभु सम हो जाता है-

रविदास सदा ही रखिए, मन माहिं सहज सभाओ।
रखो नहीं कुपंथ पग, जौ लोरों सुख चाओ।

क्रान्तिदर्शी कबीर: हुकुमचंद राजपाल, कबीर एक पुनर्मूल्यांकन, सं0 बलदेव वंशी, आधार प्रकाशन, हरियाणा, पृ0-170.

कबीर ने भी काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को त्यागकर सत्य, दया, अमा, आत्म निग्रह आदि के पालन करने पर जोर दिया। उन्होंने माया के रुप में जिन मानवीय विकारों से बचने की बात कही गयी है वह परम्परा अनुमोदित भी है। कबीर विषय तृष्णा को माया का सबसे बड़ा शस्त्र मानते है। यही मनुष्य की सहजता के मार्ग में सबसे बड़ी बढ़ा है। इसलिए कबीर मन को मारने की बात करते हैं। अगर मन को साध लिया तो सब साध लिया। इसी मार्ग से सहजता आएगी। अगर सहजता आ गयी तो सारे जीवन में एक दतरभाव आ जायेगा। मन नितद्वद और निर्विषय हो जायेगा, फिर जो कुछ करो वही पूजा बन जायेगा। जहां जाओ वहीं परिक्रमा बन जाएगी। संयम और संतोष से रहना, सत्य-अहिंसा को अपनाना तथा हर प्रकार की विलासिता से दूर रहना, संग्रह, क्रूरता एवं कदाचार का विरोध करना ही चित्त की शुद्धि है ।

जाति-पांति के भेद-भाव का विरोध

"संत कालीन समाज जातीय दृष्टि से बड़ा संकुचित था। समाज में पूर्ण अव्यवस्था थी। सब ओर पक्षपात, भेदभाव तथा वर्गगत संक्रिणता व्याप्त थी। उच्च सामंत वर्ग का वर्चस्व था। कबीर के समय जाति-व्यवस्था अत्यंत विकृत रुप में समाज में व्याप्त थी। मानव-धर्मी होने के कारण कबीर ने अपनी वाणी में बार-बार माना है कि कोई भी

व्यक्ति जन्म से ही श्रेष्ठ नहीं होता बल्कि उसकी श्रेष्ठता का आधार उसके सद्द कर्म होते हैं। इसलिए वे ब्राह्मणत्व पर गर्व करने वाले व्यक्तियों को प्रताड़ित करते हुए लिखते है :-

जौं तू बंमनी जाया। तौं आन बात है क्यों नहीं आया।।
जौं तू तुरक तुरंकनी जाया। तौ भीतर खतना क्यों न कराया।।

वे उच्च जातिगत वर्चस्व को नकारते है और समानता, उदारता, सहजता का मार्ग प्रशस्त करते है।
सही अर्थों में संत कबीर का विश्वास था कि प्रेम का ढाई अक्षर पढ़ने वाला ही पंडित है। हिन्दुओं और मुसलमानों में व्याप्त जातीय-विद्वेष कि भावना पर यह ही ज्योति से उतपन्न बताया है ---

अबल सुलह नूर उपाया, कुदरत के सब बंदे।
एक नूर ते सब जग उपजा, कोण भले को मंदे।।"

समाज में व्याप्त बिषमता और असमानता को मिटाने के लिए उन्होंने जीवन प्रयन्त प्रयास किया। उनके समय में जितना भयंकर हिन्दू मुसलमान का भेद-भाव था , उतना ही भयंकर ब्राह्मण और सुंदर का भी भेद-भाव था। भारतवर्ष में व्यवस्यों, जाति प्रथा और उच्च नीच कि भावना प्राचीन काल से चली आ रही थी। हिन्दू विचारों में उदार लेकिन व्यवहार में कटटर रहे। उनकी कथनी और करनी में भेद था। केला के पात में पात, पात में पात त्यों हिन्दुन की जात में जात, यह देश की बड़ी विडम्बना थी कि किसी जाति में जन्म लेने से कितने भी उच्च आचरण करने वाले व्यक्ति को केवल जन्म के धार पर नीच समझा जाय कि उसके छूने मात्र से छूत लगने और पापी बनने का भय हो। इस घातक प्रभाव को कबीर ने अपनी आँखों से देखा था। उन्होंने अहंकारी ब्राह्मण को फटकारा और हीनता की भावना से पराभूत शूद्र को झकझोरा -

काहे हो कीजै पांडे छोट विचार।
छोट ही से उपजा सब संसार।।
हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध।
तुम कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे शूद्र।।

क्रांति दर्शी कबीर- हुकुम चंद राजपाल, कबीर एवं पुनर्मूल्यांकन स0- बलदेव वंशी, आधार प्रकाश, हरियाणा, पृ0- 172.

"पहले वर्ण व्यवस्था केवल कामों का बंटवारा थी। वर्ण को लेकर आपस में छुआ-छूत और उच्च-नीच का भाव न था। जब से वर्ण व्यवस्था उत्तरोत्तर कठोर होती गयी और मोटा काम करने वालों के प्रति कथित्त उच्च वर्ण वालों के मन में घृणा पनपती गयी। तब से मोटा काम करने वालों के प्रति अछूत होने की भावना बढ़ती गयी। मोटा काम करने कर्मकारों के कर्म फलों का हमने भरपूर उपयोग किया, लाभ उठाया, पर इन मोटे काम के करने वालों को हमने अछूत समझा। कपास पैदा करने वाले किसान, रुई धुनने वाले धुनिया, कपड़ा बनाने वाले जुलाहा, रंगने वाले रंगरेज, सीने वाले दर्जी, धोने वाले धोबी- सभी तो निम्न जाति में जन्मे अछूत है। सब्जी उगने वाले, तेल तैयार करने वाले, मकान बनने वाले, सफाई करने वाले, चमड़े का काम करने वाले- अछूत है। कर्मकार जिनके काम से समाज सुखी है, उन्ही को हमने घृणा से देखा। संतों ने इन त्रुटियों को परखकर कर्मकारों की पक्षधरता ली और ज्ञानियों की विशाल वाहिनी सूत्र-पात किया। ऐसे संतों में रैदास, मलूक दास, पलटू दास, दादू धुनिया, नानक खत्री चरणदास, गुलाल साहब और सदन कसाई हैं।

सामाजिक इतिहास का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि अश्पृश्यता के विरोध में सदा क्रांति ने जन्म लिया है। यही क्रांति अश्पृश्यता का और जाति व्यवस्था पर कुठाराघात करती है। वेदों से लेकर मनुस्मृति, शंबूक एकलव्य, बुद्ध, मार्क्स गाँधी, आंबेडकर तक परंपरा और इतिहास के जाने कितने अध्यायों पर यह प्रश्न ठहर सा गया

है। वर्ग विहीन, वर्ण विहीन, जाति विहीन समाज कि संरचना के लिए मूल मंत्र मानवीय एकता का उद्‌द्घोष करते हुए रैदास ने कहा है -

'जात-पांत के फेर में, उलझ रहे सब लोग,
मनुष्यता को खात हुई रविदास जाति करि लोग।'

भारतीय धर्म निरपेक्षता के आधार कबीर - प्रो0 नजीर मोहम्मद, कबीर एक पुनर्मूल्यांकन, आधार प्रकाशन पृ0- 207.

व्यक्तिगत साधन पर बल : "संत काव्य के कवियों की साधना पद्धति अपर पिछली योग परंपरा का प्रभाव माना गया है। निर्गुण मत कोमनाने वाले इन संतों का बौद्ध धर्म के सिद्धों तथा नाथ पंथियों की अभिव्यक्तियों से सीधा संबंध था। इन कवियों ने वैसे ही पद तथा चौपाईयाँ की शैली अपनायी तथा राग-रागिनियों का प्रयोग किया, जिसका पूर्वर्ती साधकों ने किया। इन पूर्वर्ती साधकों में कबीर की तरह ही शास्त्रों तथा मतों का स्पंदन किया है। वे गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा तथा सहज शून्य में समाधी लगाने की चर्चा करते थे। सहज यानि सिद्धों तथा नागपंथी योगियों की तरह उनमे फरकपन पाया जाता है। संतों के संदर्भ में साखी तथा सबदी के महत्त्व को समझना भी जरुरी है। साखी दोहा शैली में अभिव्यक्त और शब्द पर शैली का ही नाम है। परन्तु साखी वस्तुतः साक्षी है, पूर्ववर्ती साधकों के अनुभव परक कथनों की साक्षी थे। संत कवि अपने अनुभव के आधार पर दे रहे हैं। शास्त्रीय सिद्धांतों तथा संस्कारों से अलग रहकर उनका सत्य का प्रमाण सहज अनुभव के स्तर का रहा है। इस प्रकार वे जड़ परम्पराओं, रुढ़ियों तथा विश्वासों से मुक्त रहे। कबीर ने अपने इस अनुभव अभिव्यक्त करने के लिए सिद्धों तथा सहजयानियों तथा योगियों की पारिभाषिक शब्दावली को अपनाया, पर भिन्न सन्दर्भों में इनका नया अर्थ दिया। साधना की प्रक्रिया में योग की साधना में प्रयुक्त होने वाले शब्द यहाँ भिन्न अर्थ ग्रहण करते है। निश्चय ही कबीर निर्गुण ब्रह्म की साधना में बिभिन्न परम्पराओं से मुक्त रहे हैं। कबीर कहते हैं -

सुर नर मुनिवन औलिया ये सब उरली तीर।
अलह राम का गम नहीं, तहं घर किया कबीर।।

उनकी साधना सहज भाव-भूमि पर क्रियाशील है। उनके प्रतिदिन का जीवन साधना के विरोध में कही नहीं है। प्रतिदिन के जीवन और इस परम साधना के अविरोध भाव पर कबीर का 'सहज -पंथ 'प्रतिष्ठित है। अपने समय के बहुप्रचलित शब्द सहज को ग्रहण करते हुए कबीर अपना अलग अर्थ निर्धारित करते है -

सहज -सहज सब कहै ,पर सहज न होवै कोहि।"
सहज - सहज सब कहै ,पर सहज की पहचान।

(किसी को नहीं है। वःतुतःजिसने सहज ही विषय (सांसारिकता) का त्याग कर दे वही सहज है। इसके लिए न घर -बार त्यागने की जरूरत है न किसी व्ह्याडम्बर की आवश्कयता। इसी प्रकार शून्य शब्द का प्रयोग बौद्ध महायानियों की तरह संतो ने किया है। संत सारे जगत को शून्य मानते है। जिसकी कोई सत्ता न हो। इन संत साधको ने इस शब्द का प्रयोग स्वतंत्र ढंग से किया है। जैसा हम देखते है ,कबीर के अनुसार शून्य लोकतरअनुभव की विशिष्टता है जो आत्मोपलब्धि का क्षेत्र है। इस स्तर पर अनुभव प्रेम के असीमआनंद म इ व्यंजित होता है। इस अभिव्यक्ति के लिए संतो ने 'सबद' शब्द का प्रयोग किया है। इन संतो के अनुसार शब्द में सारी सृस्टी समाहित है। यह अनादि संगीत है ,इश्कि तान को 'सुरतो' तथा ताल को 'निरति' कहा गया है। यही दोनों मिलकर सृस्टी को पूर्ण करते है। ससीम ताल से मिलकर आसिम सुर रुप ग्रहण करता है। असीम परमात्मा ' सुरति-निरति' केसर ताल से बंधकर ही अपने को प्रकट करता है। इस प्रकार जहाँ रूप की अभिव्यक्ति है वहाँ सृष्टि अभिभाव है।

इस प्रकार संत कवि की प्रेम साधना में द्वन्द की अभिव्यक्ति मिलती है। इसलिए इन भक्त कवियों का काव्य में माधुर्य तथा संदर्भ का समन्वय दिखलाई पड़ता है। इस स्तर पर सीमा असीम की तथा असीम सीमा को प्राप्त

करने के लिए व्यग्र है। इन साधकों में ज्ञान मार्गियों के सामान आत्म ज्ञान के स्तर पर अविधा के मायाजाल से मुक्त होकर अद्वैत सत्ता में लीन होने की बात को स्वीकार करने की अपेक्षा प्रेम पर अधिक बल देता है। इनके द्वारा प्रयुक्त 'लौ' शब्द लय समझा जाता है। पर 'लौ' वास्तव में प्रेम वाचक शब्द है। परम सत्ता से 'लौ' लगाने का मतलब परमानन्द का अलौकिक अनुभव प्राप्त करना है -

कंबल कुआँ में प्रेम रस पियै बार-बार।

अर्थात प्रेम योग से साधक अपनी सिमित सत्ता में सहज ही विश्वास का आनंद प्राप्त करता है। व्यक्तिगत जीवन में पवित्रता तो जैसे संतों की साधना का मूल मंत्र थी। उचित करनी ईश्वराभी मुख गुणों का विकास तथा अवगुणों का परित्याग दी जैसे उनकी साधना संबल थे।

"संत रैदास की साधना भी इन्हीं प्रवृतियों पर चली। उनकी साधना में प्रेम और भक्ति का मेल था। उन्होंने आतंरिक भावुकता पर अधिक बल दिया। उन्होंने कर्मकांड, बाहरी वेश-भूषा ,तीर्थाटन आदि को निम्न कोटि का माना। रैदास के अनुसार तितिया प्रधान धर्म तथा शरीर को कष्ट देने वाली साधना एवं जिनसे केवल जनता पर प्रभाव उत्पन्न किया जाता है केवल दिखावा है। रैदास तत्कालीन युग में चले आ रहे परंपरागत रूप से प्रचलित धर्म के रूढ़ स्वरुप की स्पष्ट शब्दोमें आलोचना भी की -जो अविनासी सबका कर्ता,व्यापी रहमो सब ठारै।

पंचतंत्र जिन क्रिया पसारा, सो यो ही किषुऔर रे।
तूं तो कहत हैं यों ही कर्त्ता, यांक मनिरव करै रे।
तारणि तारणि सकतिजे यामै,तो आपण क्यूँ न तिरै रे।
अहि भरोसे सब जग बूढ़ा, सुणि पंडित की बात रे।
याकि सेव सूल नहीं भाजै, कटे न संशय फ़ांसरे।
सोच - विचारी देखि या मूरत,यूँ छोड़ी रविदास रे।"

विद्वानों ने मात्र ऐसी साधन जिसमे केवल अपना कल्याण हो, उसे कभी प्रश्रय नहीं दिया। भारतीय समाज में परोपकार का जीवन में आधोपान्त महत्त्व रखते हुए भी जीवन के अंतिम आश्रम संन्यास में सन्यासी का कर्तव्य लोक को अभय देना ही बताया गया है। संतो ने इस रूप को ही लोक हित मे समाहित कर लिया है।

1 .संत रैदास -योगेंद्र सिंह,लोक भर्ती प्रकाशन ,इलाहबाद ,पृ0-65में आलोचना भी की -जो अविनासी सबका कर्ता,व्यापी रहमो सब ठारै।

पंचतंत्र जिन क्रिया पसारा ,सो यो ही किषुऔर रे।
तूं तो कहत हैं यों ही कर्त्ता,यांक मनिरव करै रे।
तारणि तारणि सकतिजे यामै,तो आपण क्यूँ न तिरै रे।
अहि भरोसे सब जग बूढ़ा, सुणि पंडित की बात रे।
याकि सेव सूल नहीं भाजै, कटे न संशय फ़ांसरे।
सोच - विचारी देखि या मूरत,यूँ छोड़ी रविदास रे।"

विद्वानों ने मात्र ऐसी साधन जिसमे केवल अपना कल्याण हो, उसे कभी प्रश्रय नहीं दिया। भारतीय समाज में परोपकार का जीवन में आधोपान्त महत्त्व रखते हुए भी जीवन के अंतिम आश्रम संन्यास में सन्यासी का कर्तव्य लोक को अभय देना ही बताया गया है। संतो ने इस रूप को ही लोक हित मे समाहित कर लिया है।

1 .संत रैदास -योगेंद्र सिंह,लोक भर्ती प्रकाशन, इलाहबाद, पृ0-65 में आलोचना भी की –

जो अविनासी सबका कर्ता, व्यापी रहमो सब ठारै।
पंचतंत्र जिन क्रिया पसारा, सो यो ही किषुऔर रे।

तूं तो कहत हैं यों ही कर्त्ता, यांक मनिरव करै रे।
तारणि तारणि सकतिजे यामै, तो आपण क्यूँ न तिरै रे।
अहि भरोसे सब जग बूढ़ा, सुणि पंडित की बात रे।
याकि सेव सूल नहीं भाजै, कटे न संशय फ़ांसरे।
सोच - विचारी देखि या मूरत, यूँ छोड़ी रविदास रे। "

विद्वानों ने मात्र ऐसी साधन जिसमे केवल अपना कल्याण हो, उसे कभी प्रश्रय नहीं दिया। भारतीय समाज में परोपकार का जीवन में आधोपान्त महत्त्व रखते हुए भी जीवन के अंतिम आश्रम संन्यास में सन्यासी का कर्तव्य लोक को अभय देना ही बताया गया है। संतो ने इस रुप को ही लोक हित मे समाहित कर लिया है।

1 .संत रैदास -योगेंद्र सिंह,लोक भर्ती प्रकाशन, इलाहबाद, पृ0-65.

जीवात्मा की आकुलता : संत कवियों ने अपनी भक्ति-साधना के लिए प्रेम-तत्व को चुना। कहा जाता है भगवान प्रेम के वश में होते हैं। किसी से निकटता के लिए प्रेम भावना का होना आवश्यक है। प्रेम के बिना सारा जग सुना है। कबीर दस जी ने कहा भी है -

जे घट प्रेम न संचरै, ते घट जान मसान।
जैसे स्वाल लोहार की, सांस लेट बिनु प्राण।।

प्रेम साधना में विरह है बड़ा महत्त्व है। निर्गुण संत कवियों ने प्रेम के माध्यम से उस अगम, अगोचर यह प्रेम का 'अनिधारा' तीर है जिसको लगता है वही उसकी वेदना को जनता है। इसकी चोट का चिन्ह शरीर में कहीं नहीं खोजै जा सकता है। इसका कोई उपचार भी नहीं। यह कबीर के द्वारा प्रस्तुत प्रेम की भूमिका है जिस पर चलकर साधक अनेक स्तरों पर अपने प्रिय के विरह की अनुभूति पता है। इस अनुभव की प्रक्रिया में वह प्रिय को प्राप्त करता है। इस प्रेम की अनुभूति में विरह के अनेक भाव-पक्षों की अभिव्यक्ति हुई है। विरह के उन्माद में विभोर यह आत्मा बार-बार रुदन करती है। पपीहों की करुँ पुकार सुनकर यह आकाश जल वर्षा देता है फिर भी यह आत्मा सर्वथा निराश ही रहती है। प्रिय के वियोग में शरीर का तप नहीं जाता जल में अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है। तू जल निधि है मैं जल की मीन हूँ, इस संसार रुपी जल में रहते हुए भी जल रूपी प्रिय के बिना खिन्न हूँ। कबीर जीवन के स्तर पर अनेक स्थितियों का चित्रण करते हैं-

आँखड़िया प्रेम कसाइयाँ, लोग जाने दुखड़ियां।
साई अपने कारणै, रोइ-रोइ रातड़ियाँ।।

अथवा

यह तन जालौ मसि करौं, ज्यों धुवां जाई सरग्गी।
मति वे राम दया करैं, बरस बुझवै अग्गि।।

व्यक्त करती हैं- न मुझे अन्य भाता है न नींद आती है , घर या वन कहीं भी धैर्य नहीं बंधता है।

प्रिय को बिना देखे विहवल होकर उसके प्राण जाने-जाने को है, है ऐसा कोई उपकारी जो हरी को यह कह सुना। " यह प्रेम की विरह परक व्यंजना साधना के स्तर पर व्यापक मानवीय संवेदन, अनुभवों तथा भावों को अभिव्यक्त करती हैं। वह घर, परिवार के स्नेह संबंध को छोड़कर प्रिय की चरणों में आसक्त है। विरह की मनः स्थिति उसके अंतर् में 'ताल बेली ' मची है, जिस प्रकार जल के बिना मीन छटपटाती है। दिन में भूख नहीं, रत में नींद नहीं, सेज बैरन हो गयी है। यह पूरा चित्र विरह की स्थिति और मनोदशाओं का स्वभाविक रूप प्रस्तुत करता है। कबीर अपने को प्रियतम की दासी कहते हुए अंत में इस कथन 'दिप दयाल करि आवौ समरथ सिरजनहार' के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति को आध्यत्मिक स्तर प्रदान करते हैं।

वस्तुतः प्रेम-साधना में विरह पक्ष में भाव-व्यंजन अधिक सघन, मार्मिक तथा व्यापक स्तर पर संगठित होते हैं। इस स्तर पर विरह व्यापक मानवीय भाव भूमि से सहज ही अलौकिक स्तर को व्यंजित करती है। कबीर विरहणी के रूप में अपनी साधना को रुपायित करते है। कबीर की आत्मा बालम बिना तड़प-तड़प कर भोर करती है। अपनी सूनी शैय्या पर वह जन्म गवां रही है। शरीर चरखा बन गया है, नेत्र थकित है प्रिय का मार्ग अब सझता नहीं है। इस प्रकार साधक निरंतर अपने प्रिय से मिलने को प्रतीक्षारत है। बार-बार उसके मन में ख्याल आता है 'वे दिन कब जायेंगे भाई' इस मिलन की कामना में हिल-मिल कर खेलने, प्रेम-पाश में बाँधने और तन-मन को एक दूसरे में समाहित कर लेने की इच्छा निहित है। साधक इस मिलन में सारे सांसारिक तापों को शांत करने की अभिलाषा है, क्योंकि स्वामी से मिलकर आननद मंगल का भाव हर ओर व्याप्त हो जाता है।

संत रविदास ने प्रेम की विरहनुभूति को बड़े मार्मिक शब्दों में अभिव्यक्त किया है। वे कहते है, मुझे परमात्मा से प्रेम हो गया है, इसे कैसे रोका जा सकता है? अब रोकने से कोई लाभ नहीं। प्रेम का रोग रोम-रोम में समा गया है। ऐसे रोगी का कोई इलाज नहीं -

'रविदास मोरे मन लागियो, राम प्रेम को तीर।
राम रसायन जाऊ मिलहि,तऊ हरै हमारो तीर।।

'जिस प्रेमी के हृदय में प्रेम का तीर चुभ जाता है, वह विरह-व्यथा से व्याकुल हो उठता है। परमात्मा का वियोग इससे सहन नहीं होता, वह बिलकुल अधीर हो उठता है। वास्तव में यह विरह ही सच्चे प्रेम की पहचान है और इस विरह के बिना कोई परमात्मा से नहीं मिल सकता।

प्रेमी के हृदय में दिन-रत विरह की आग सुलगती रहती है और प्रियतम के विचार मन में आते ही विरह की ज्वाला भड़क उठती है। प्रियतम के दर्शन के बिना जीवन असह्य हो जाता है। एक दिन, एक युग के समान बीतता है। ऐसी विरह व्यथा एकमात्र प्रियतम के मिलाप से ही दूर हो सकती है -

राम प्रेम हौं बरजी किमि, अब बरजत नहीं काज।
रोम-रोम अमि रमि गयौ, ताहिं न होत इलाज।।

जैसे चुने की रोड़ी पर जब पानी भी छिड़का जाता है, उससे आग भड़क उठती है, ठीक उसी प्रकार ज्यों ही प्रियतम की याद आती है, शरीर में विरह की अग्नि भड़क उठती है-

जो मोहिं वेदन का सनि आंखौं,
हरी बिन जीवन कैसे करि राखौ।
जिव तरसै इक दंगि वसेरा,
करहु संभाल तुम सिरजन मेरा
विरह तपै तन अधिक जरावै,
नींद ही न आवै भोजन नहीं भावै।।

संत रैदास कहते है कि हे प्रभु तुम्हारा दर्शन किये बहुत समय हो गया। अब मैं एयर प्रतीक्षा नहीं कर सकता, मैं तुम्हारी दर्शन कि आशा में ही जीवित हूँ। जब लगि नदी न समुन्द्र समावै तब लगी बढे हंकारा, जब मन मिल्या राम सागर सूं, तब मिटटी यह पुकारा।

1. गुरु रविदास- राधास्वामी सत्संग व्यास, पृ0- 189, लेखक- काशीनाथ

नामस्मरण : "संत साहित्य में नाम सुमिरण कि महिमा का वर्णन बड़ी श्रद्धा एवं प्रेम से किया गया है। नाम साधना, शब्द साधना ही है। गुरु द्वारा शिष्य को प्रदत दीक्षा मंत्र ही नाम है। गुरु कि शक्ति द्वारा उस नाम की, मंत्र शक्ति बढ़ जाती है। संतों ने सभी प्रकार की साधनायें छोड़कर मनुष्यों को नाम साधना की सलाह दी। क्योंकि इस सृष्टि के

आरम्भ से ही नाम का अस्तित्व था। कबीर को गुरु द्वारा 'राम ' का मंत्र ही साधना के रूप में मिला था। इसलिए राम नाम को 'ततसार' कहते है। संतों का विचार है कि यह नाम ही उत्त्पति, पालन और प्रलय करने वाला है। सभी स्थितियों और सभी व्यापारों में नाम ही उपदान रूप में देखा जा सकता है। ईसिस कारण राम नाम कि महिमा अनंत और अपार है। कबीर दास जी के लिए नाम जप ही सब कुछ है-

सोधन मेरे हरी को नाऊ, गाँठिन बांधौ बेचनी खाऊं।
नाउँ मेरे खेती नाउँ मेरी बारी, भगति करौं मैं सरिर तुम्हारी।।
नाउँ मेरे सेवा नाउँ मेरे पूजा, तुम्ह बिन और न जोनों दूजा
नाउँ मेरे बंधन नाउँ मेरे भाई, अंत कि चिरियाँ नाउँ सहाई।
नाउँ मेरे निरधन ज्यूँ निधि पाई, कहै कबीर जैसे रंक मिठाई।।

कबीर के लिए नाम ही सम्पूर्ण तत्व है, यह उनके चिंतन, उनकी साधना का लक्ष्य है, नाम ही मुक्ति का दाता है, वही ब्रह्म से एकता का, उसकी प्राप्ति का एक मात्र साधन है। नाम तत्व सहज भक्ति तथा भक्ति का श्रेष्टतम साधन है, इसमें किसी प्रकार के विधि -विधान, वाहय साधनो की आवश्क्य तान ही, यह तो अंर्तआत्मा की आवाज है जो यक्त की पवित्रता निर्मलता को बनाए रखने में सहायक होती है। कबीर ने यह अनुभव किया कि जो लोग वाहय साधनो से भक्ति करते है वे उच्च स्थिति को प्राप्त नहीं करते,उनको सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं होता। नाम तत्व पूर्ण त्याग और शील कि अपेक्षा रखता है। ऐसा साधक सांसारिक से दूर रहता है। वह तुच्छ इच्छाओ का दास बनकर उसके वशीभूत रहता है। नाम से ही वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होती है। कबीर दास ने बतलाया है कि नाम महिमा का वर्णन करने से, निरन्तन आत्मचिंतन करने से और भ्रम करने से समस्त दुख दूर होकर मनुष्य के कर्म -बंधन कट जाते हैं। नाम आत्म-चिंतन की साधना में सहायक होता है, अन्यथा -

राम नाम अंतर गीत नाही,
तो जनम जुवां ज्युं हारी।"

नाम तत्व हमारे जीवन हमारे ज्ञान, साधन मार्ग को प्रशस्त करने वाला है, यह अनेक दुविधाओं से मुक्त कर मनुष्य को आनंद भाव से भर देता है ,यह सतत चित, आनंद की प्राप्ति का द्वार खोलता है -

यह संसार सकल दे मेला,राम कहे ते सूचा।
कह कबीर नाव नहीं छोड़ो, गिरत परत चढ़ी ऊंचा।।

नाम तो भ्रम का सामीणय,उससे तादात्म्य प्रदन करने वाला है। कबीर को सी समस्त संसार कवाल नाम ही उज्जवल और पवित्र लगता है, वे उसे किसी भी हाल में नहीं छोड़ना चाहते, क्योंकि यही साधन मनुष्य को भव-सागर पर कराने में सहायक सिद्ध होता है। कबीर सदैव निर्मल नाम सुमिरन करना चाहते है। ऐसा भक्त उनको लेशमात्र भी प्रिय नहीं जो नाम सुमिरन नहीं करता। नाम की तुलना में कबीर योगी, यति, मुनि, मौनी, जटाधारी पंडित, सिद्ध किसी को भी महत्त्व नहीं देते, क्योंकि ये वही तत्व तक ही सिमित हैं। नाम तत्व आत्मा में उजाला कर देता हैं। आडमबरी नाम सुमिरन करने वालों में भक्ति भावना बहुत भोंडी होती हैं और वाह्यडम्बरों का विशाल समूह होता है, ऐसे व्यक्ति भौतिक भर से दबे रहते हैं। वे सच्चे हर्ष या आनंद का उल्लास प्राप्त नहीं कर सकतें।

वास्तव में नाम सुमिरन भाव-ग्रहीय गुण विशिष्ट रूप निर्गुण उपासना हैं। सुपी लोग नाम सुमिरन को 'जिक्र' कहते हैं। यह अंतरंग साधना हैं। कबीर के लिए बैखरी वाणी से नामोच्चारण या माला के फेरने का ही अभिप्राय नहीं हैं, उनके लिए नाम परमात्मा का एक ऐसा प्रतिक हैं जो निश्चित रुप से परमात्मा का एक ऐसा प्रतिक है जो निश्चित रूप से परमात्मा से आत्मा की अभिन्नता अनुभव करा देता है। यह आत्म चैतन्य का मंत्र है, सच्चा भगवत स्मरण है। नाम साधक संयम और निष्ठां से नाम साधना करते- करते उचित समय पर साक्षात्कार प्राप्त करते है। उन्हें हृदय की

ऐकान्तिक व्याकुलता की फल पर्पटी होती है। वाच्य और वाचक में जो संबंध रहता है उसकी ताश्च्ता की उपलब्धि नामसाधक सहज ही करा सकते है। साधक को नामाभास और नामपराधों का का त्याग कर नाम-ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि संस्कार युक्त नाम अर्थात शोषित नाम जाग्रत शक्ति स्वरूप है। इस सजीव शक्ति की तुलना में प्राकृत साधकों की सारी शक्तियां नगण्य हैं। "

नाम ही वह परम् सत्य हैं जो आदि से अंत तक विधमान रहने वाला हैं। यह वह शक्ति हैं जिसके द्वारा परमात्मा अपने आपको अभिव्यक्त करता है। यद्दि्प परमात्मा सबके अंदर है, फिर भी वह प्रकृत नहीं होता जबतक हम नाम-भक्ति का अभ्यास नहीं करते। परमात्मा में स्वयं ही अपनी प्राप्ति का मार्ग हमारे लिए बना रखा है। कोई भी अन्य साधन नाम-भक्ति के सामने फीका है। विशेषकर इस कलयुग में परमात्मा से मिलने का नाम नाम-भक्ति के शिव और कोई नहीं। रविदास जी ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा है कि इस दुस्तर संसार को एक मात्र नाम की ही नौका द्वारा पार किया जा सकता है। जो नाम को छोड़कर कोई अन्य साधन अपनाता है, वह मनो विशाल और सुदृढ़ नव को छोड़ छोटी और कमजोर डोंगी के सहारे विकराल संसार-सागर को पार करने की दुष्चेष्टा करता है और अपने आपको घोर संकट में डालता है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. क्रांतिदशी कबीर: हुकुमचंद राजपाल, कबीर एक पुनर्मूल्यांकन, सं बलदेव वंशी, आधार प्रकाशन हरियाणा पृ0- 170.
2. भारतीय धर्मनिरपेक्षता के आधार कबीर- प्रो0 नजीर मोहम्मद, कबीर एक पुनर्मूल्यांकन, आधार प्रकाश पृ0- 207.
3. कबीर: एक नई दृष्टि- रघुवंश, लोक भर्ती प्रकाशन इलाहबाद, पृ0- 85.
4. संत रैदास- योगेंद्र सिंह, लोक भर्ती प्रकाशन इलाहबाद पृ0- 65.
5. गुरु रविदास - राधास्वामी सत्संग व्यास पृ0- 189, लेखक- काशीनाथ
6. कबीर चिंतन- डॉ0 ब्रजभूषण शर्मा, वाणी प्रकाशन, पृ0- 75.

•